Anveshan (अन्वेषण): A Multidisciplinary Journal in Hindi
Vol. 5, Issue 1 – 2021
ISSN: 2581-4044

आचार्य महाप्रज्ञ का शिक्षा दर्शन

डॉ. हेमलता जोशी[1]

[1]*सहायक आचार्य, जैन विश्वभारती संस्थान लाडनूं (राज.)*

शोध-सार

मानव के विकास क्रम में शिक्षा का सबसे बड़ा योगदान है। शिक्षा ही वह साधन है जो अज्ञान रूपी तिमिर को दूर ज्ञान रूपी प्रकाश को प्रज्जवलित करने में सहायक है। मानव मस्तिष्क में छिपी हुई शक्तियां, क्षमताएं, योग्यताएं, संभावनाएं शिक्षा से ही व्यक्त होती हैं। यही मानव को पशुत्व से दिव्यत्व प्रदान करने में सहायक है। कहने का तात्पर्य है कि शिक्षा से ही मानव निम्न कोटि से उच्च कोटि का जीवन प्राप्त करता है। इसीलिए शिक्षा को विकास का सशक्त माध्यम माना गया है। प्राचीन काल से ही अनेक विद्वानों से शिक्षा पर अपनी कलम चलाई। अपने-अपने दर्शन के आधार पर शिक्षा के दर्शन को प्रस्तुत किया साथ ही शिक्षा को आवश्यक तत्वों से परिपूर्ण करने हेतु भी अनेक महत्त्वपूर्ण सुझाव दिए। अतः यह स्पष्ट होता है कि भारतीय शिक्षा पद्धति महान ऋषि-मुनियों, दार्शनिकों, चिंतकों, विद्वानों के चिंतन-मंथन का विषय रही है। इसीलिए भारतीय साहित्य में वेद, पुराण, आगम, त्रिपिटक आदि ग्रंथों के अतिरिक्त वर्तमान साहित्य पर भी इसकी स्पष्ट छाप दिखाई देती है। वर्तमान दार्शनिकों में एक प्रमुख दार्शनिक थे आचार्य महाप्रज्ञ जिनका शिक्षा दर्शन प्राचीन और अर्वाचीन शिक्षा का समन्वित रूप है। एक ओर प्राचीन सिद्धांतों, अध्यात्म-योग पद्धति को महत्त्व दिया तो दूसरी ओर वर्तमान विज्ञान को। शिक्षा में सैद्धांतिक ज्ञान के साथ यौगिक प्रयोगों विशेषकर प्रेक्षाध्यान के अभ्यास को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया जिससे सर्वांगीण व्यिक्तत्व की परिकल्पना पूर्ण हो सके, एक आध्यात्मिक वैज्ञानिक व्यक्तित्व का निर्माण हो सके। प्रस्तुत लेख में आचार्य महाप्रज्ञ के शिक्षा

© Eureka Journals 2021. All Rights Reserved.

दर्शन को प्रस्तुत करने का विनम्र प्रयास किया गया है जो सुधी पाठकों के लिए उपयोगी हो सकेगा, ऐसा विश्वास है।

कुर्जी शब्द: शिक्षा, व्यक्तित्व, पाठयक्रम, भावात्मक परिष्कार, शिक्षक, शिक्षण, अनुशासन।

जीवन परिचय

आचार्य महाप्रज्ञ उस व्यंक्तित्व का नाम है जो जैन धर्म तेरापंथ के धर्म संघ के आचार्य तो थे ही साथ ही एक महान संत, विचारक, दार्शनिक, अनेकांत के मर्मज्ञ, महान योगी, वात्सल्य की प्रतिमूर्ति न जाने कितनी ही विशेषताओं के पुंज थे। उनका प्रखर और ऊर्वर मस्तिष्क अनेक समस्याओं का समाधान देने और जीवन को नई दिशा देने में सदैव ही अग्रणी रहा। यही कारण रहा कि अनेक संस्थाओं, अनेक विद्वानों, अनेक बुद्धिजीवियों द्वारा उनके व्यक्तित्व का मूल्यांकन कर उन्हें अनेक उपाधियों, अनेक पुरस्कारों से सम्मानित किया गया। आचार्य महाप्रज्ञ का जन्म 14 जून 1920 में टमकोर (झुंझुनू) राजस्थान में हुआ। इनकी माताजी का नाम बालूजी और पिताजी का नाम तोलारामजी चोरड़िया था। इनकी प्रारंभिक शिक्षा माता के सुसंस्कारों द्वारा ही संपन्न हुई। 10 वर्ष की अल्पायु में ही इन्होंने अपनी माता जी के साथ तेरापंथ धर्म संघ में मुनि दीक्षा ली। आचार्य तुलसी के सन्निधि में इनकी शिक्षा संपन्न हुई जहां इन्होंने संस्कृत, प्राकृत आदि प्राच्य भाषाओं का गहन अध्ययन किया। योग में अनेक प्रयोगों की गहन साधना कर पे्रक्षाध्यान नामक ध्यान की वैज्ञानिक पद्धति सर्वजन हिताय, सर्वजन सुखाय के लिए 1975 में प्रस्तुत किया। इसके अतिरिक्त वर्तमान शिक्षा को नई दिशा देने हेतु ध्यान-योग के प्रयोगों को उसमें महत्त्व दिया जिससे विद्यार्थी का आंतरिक परिवर्तन हो सके। इस हेतु शिक्षा में जीवन विज्ञान नामक विषय को 1978 में शिक्षा जगत को दिया। इनका साहित्य गद्य और काव्य दोनों ही मानव जाति के लिए कई रूपों में अपना विशेष स्थान रखता है। इससे स्पष्ट ज्ञात होता है कि आचार्य महाप्रज्ञ वास्तव में अपने नाम के अनुकूल थे क्योंकि इन्होंने इस नाम को सार्थक सिद्ध किया। इनकी विद्वता, इनकी विनम्रता, इनके समर्पण, इनके अनुशासन आदि अनेक गुणों का मूल्यांकन कर इनके गुरु आचार्य तुलसी ने इन्हें महाप्रज्ञ की उपाधि दी। इतना ही नही,ं आगे चलकर आचार्य तुलसी ने इन्हें आचार्य पद पर नियुक्त कर स्वयं आचार्य पद का त्याग

© Eureka Journals 2021. All Rights Reserved.

कर दिया। गुरु-शिष्य का यह आत्मीय भाव, एक दूसरे प्रति समर्पण भाव वास्तव में एक मील का पत्थर है जो शिक्षा जगत के लिए एक अद्भुत उदाहरण है। 90 वर्षों के जीवन काल में आचार्य महाप्रज्ञ ने अनेक महत्त्वपूर्ण कार्यों से समाज को लाभान्वित किया। 9 मई 1910 को शरदार शहर (राज.) में आचार्य महाप्रज्ञ का निधन हुआ। उनका जीवन दर्शन मानव जाति के लिए सदैव प्ररेणास्रोत बना रहेगा।

आचार्य महाप्रज्ञ की विद्वता उनके साहित्य के माध्यम से हमें कई रूपों में दृष्टिगत होती है। शिक्षा का ही क्षेत्र नहीं वरन् व्यक्ति, परिवार, समाज, संस्कृति, राजनीति, अर्थनीति, पर्यावरण, अहिंसा, स्वास्थ्य, दर्शन, अध्यात्म, ध्यान-योग, मानवीय एकता, विश्वशांति आदि अनेक महत्त्वपूर्ण विषयों पर अपनी वाणी का, अपनी लेखनी का यथासंभव प्रयोग किया। उन्होंने जो भी समाधान दिए, जो भी दिशा निर्देश दिए, उन्हें सटीक तथ्यों और रोचक उदाहरणों के माध्यम से ठोस आधार देकर समझाने का प्रयास किया। आचार्य महाप्रज्ञ ने बौद्धिक विकास के साथ भावशुद्धि को महत्त्व दिया। भाव ही हमारे व्यवहार के लिए उत्तरादाई होते हैं। व्यक्तित्व विकास से लेकर विश्वशांति तक की यात्रा में भाव शुद्धि अपना विशेष स्थान रखती है। अतः बौद्धिक विकास के साथ भावात्मक परिष्कार जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में अति आवश्यक है। मानव को महामानव बनाने में सक्षम है। इससे व्यक्ति ही नहीं वरन् वैश्विक स्तर पर भी सुख-शांति का वातावरण स्थापित किया जा सकता है। आचार्य महाप्रज्ञ ने सैद्धांतिक ही नहीं वरन् प्रायोगिक स्तर पर इस हेतु अनेक प्रयोग दिए हैं जो वैज्ञानिक धरातल पर सार्थक सिद्ध होते हैं। पे्रक्षाध्यान में आसन, प्राणायाम आदि के अतिरिक्त कायोत्सर्ग, श्वास पे्रक्षा, चैतन्य केन्द्र पे्रक्षा, लेश्याध्यान, अनुपे्रक्षा अपना विशेष स्थान रखते हैं। इससे स्पष्ट होता है कि आचार्य महाप्रज्ञ ने आत्म कल्याण के साथ परकल्याण को भी बहुत महत्त्व दिया। वास्तव में उनका जीवन कई संदर्भों में मानव जाति के लिए सदैव मार्गदर्शन करता रहेगा।

शिक्षा का स्वरूप

आचार्य महाप्रज्ञ का शिक्षा दर्शन अनेक विशेषताओं को लिए हुए हैं। इनके शिक्षा दर्शन में जीवन से जुड़े सभी पक्षों को विशेष महत्त्व दिया गया है। जीवन की व्याख्या एक कोण से नहीं की जा सकती है। अतः अनेक कोणों से जीवन की व्याख्या करना व्यक्तित्व विकास के

© Eureka Journals 2021. All Rights Reserved.

साथ ही अनेक प्रकार के विकास के लिए भी आवश्यक है। इसमें सहायक बनती है शिक्षा। आचार्य महाप्रज्ञ शिक्षा को विकास का सशक्त माध्म मानते हैं। उनका मानना है कि मनुष्य के क्रमिक विकास में तीन वृत्तियां उपलब्ध हैं-जिज्ञासा, बुभूषा और चिकीर्षा। जिज्ञासा के कारण वह नए-नए तथ्यों को जानना चाहता है, बुभूषा के कारण वह स्वयं को बदलना चाहता है और चिकीर्षा के कारण वह कुछ करना चाहता है। इन तीन वृत्तियों ने ही विकास के क्रम को आगे बढ़ाया और विकास के लिए उसने माध्यम बनाया शिक्षा को। शिक्षा का मूल अर्थ है अभ्यास। शिक्षा की पूरी प्रक्रिया है पहले ग्रहण करो फिर उसका आसेवन करो, फिर उसका सेवन करो।[1] आचार्य महाप्रज्ञ ने ज्ञान के साथ आचरण को प्रमुखता दी। अतः ज्ञान और आचरण की दूरी को कम करना, कथनी-करनी में एक रूपता लाना ही पूर्ण शिक्षा है। इसी से अनेक गुणों का विकास होता है। आचार्य महाप्रज्ञ कहते हैं कि शुद्ध आचरण, आत्मगौरव, स्वावलंबी, कर्तव्य परायण तथा कर्तव्याकर्तव्य का विवेक कराने वाली शिक्षा ही वास्तव में शिक्षा है।[2] मानव जीवन का संपूर्ण विकास, सर्वोपरि उन्नति, मानव की सुप्त शक्तियों का विकास और समाज के लिए उपयोगी बनाने वाली शक्ति शिक्षा है। संपूर्ण जीवन को श्रेष्ठतम ढंग से व्यतीत करने के लिए शिक्षा प्रशिक्षण देती है।[3] शिक्षा से ज्ञान की प्राप्ति होती है और ज्ञान ही जीवन विकास में सहायक है। आचार्य महाप्रज्ञ ने ज्ञान को बीज माना है। उनका कहना है कि ज्ञान हमारी बहुत बड़ी उपलब्धि है जिसके बाद अंकुरण होता है, पल्लवन, पुष्पन और फलन होता है। यह बीज है हमारा है।[4] शिक्षा से मानव ही अंतर्निहित प्रतिभा स्फुरण पाकर उसके उच्च व्यंक्तित्व के रूप में व्यक्त होती है।[5] इससे स्पष्ट होता है कि आचार्य महाप्रज्ञ ने शिक्षा को एक शक्ति के रूप में, बीज के रूप में माना है जो मानव के सर्वांगीण विकास में अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करती है।

आचार्य महाप्रज्ञ ने शिक्षा के व्यावहारिक पक्ष को बहुत महत्त्व दिया। अर्थात् ज्ञान प्राप्ति के साथ चारित्रिक विकास को भी बहुत महत्त्व दिया। उनका कहना है कि कोरा अज्ञान मिटा लेना, कोरा प्रबंध रट लेना जीवन के लिए पूरी नहीं, अधूरी बात है। पूरी बात तब होती है जब ज्ञान के साथ-साथ चरित्र भी बढ़ता है। अतः चरित्र और ज्ञान का संतुलन होना चाहिए।[6] ज्ञान, ज्ञान के लिए नहीं अपितु परिवर्तन के लिए होना चाहिए। पहने जानना फिर बदलना है, नया निर्माण करना है। यदि विकास और नव निर्माण की प्रक्रिया ज्ञान के जुड़ी हुई न हो तो ज्ञान सीमित रह जाएगा। नया निर्माण और विकास करने के लिए ज्ञान का क्षेत्र बहुत

© Eureka Journals 2021. All Rights Reserved.

व्यापक हो जाता है। जानो और करो को कभी विभक्त नहीं किया जा सकता है। ज्ञान और प्रयोग को कभी अलग से नहीं देखा जा सकता है। हमारी प्रक्रिया में ज्ञानात्मक और प्रयोगात्मक दोनों ही पक्ष जुड़े हुए हैं। दोनों को अलग करने से हमारा दृष्टिकोण एकांगी बन जाएगा। हमें जगत को जानना है और बदलना है, व्यक्ति को जानना है, बदलना है, समाज को जानना है, बदलना है। व्यक्ति बदले, समाज बदले-यह हमारा उद्घोष है।[7] शिक्षा जगत का प्रसिद्ध सूत्र रहा है सा विद्या या विमुक्तए-विद्या वही है जिससे मुक्ति सधे। आचार्य महाप्रज्ञ ने मुक्ति को अलग ढंग से व्याख्यायित किया। उनका कहना है कि मुक्ति को हमने मोक्ष के संदर्भ में देखा। जब वर्तमान क्षण में मुक्ति मिल जाती है तो आगे भी मिल सकती है। जो वर्तमान क्षण से बंधा है, उसे आगे मुक्ति मिलेगी, ऐसी कल्पना भी नहीं की जा सकती। मुक्ति का एक व्यापक अर्थ है- अज्ञान से मुक्त होना, संवेगों के अतिरेक से मुक्त होना, संवेदों के अतिरेक से मुक्त होना, धारणा और संस्कार से मुक्त होना, निषेधात्मक भावों से मुक्त होना।[8]

आचार्य महाप्रज्ञ कहते हैं हमारे व्यक्तित्व की दो धाराएं हैं-चेतना की धारा और जागृति की धारा। चेतना की धारा का अवरोधक है अज्ञान और जागृति की धारा का अवरोधक है मोह, मूच्छा, मूढ़ता।[9] जिसमें समझदारी का अभाव होता है, जिसमें बुद्धि का विकास कम होता है, उसे सामान्य भाषा में मूर्ख कहा जाता है। मूढ़ वह होता है जो पढ़ा-लिखा होने पर भी मूर्ख से ज्यादा मूर्खता करता है। मूढ़ जान-बूझकर गलती करता है।[10] ज्ञान का सीधा संबंध आचरण से नहीं है। ज्ञानी व्यक्ति आचरणवान ही हो, यह आवश्यक नहीं है। हमें यह स्पष्ट बोध होना चाहिए कि मूर्खता मिट जाने से मूढ़ता नहीं मिटती। बौद्धिक विकास हो जाने पर मूढ़ता नहीं मिटती। मूढ़ता मिटती है भावनात्मक विकास से।[11] अतः शिक्षा का काम केवल स्मृति को बढ़ाना नहीं, केवल आंकड़ों से मस्तिष्क को भरना नहीं है, साक्षरता ला देना उसका काम नहीं है, उसका काम भावों का परिष्कार है।[12]

आचार्य महाप्रज्ञ बौद्धिकता को व्यर्थ नहीं मानते। यह चेतना के विकास की एक भूमिका है। यह बहुत आवश्यक है कि किन्तु केवल बौद्धिकता खतरा पैदा करती है। उसके साथ यदि भावनात्मक विकास हो जाता है तो वह वरदान बन जाती है। केवल बौद्धिक विकास से ही व्यक्ति अपने आवेशों, आवेगों पर और चरित्र में विकृति पैदा करने वाले तत्त्वों पर नियंत्रण

© Eureka Journals 2021. All Rights Reserved.

नहीं कर सकता। इसलिए वह बौद्धिकता अभिशाप बन जाती है। यदि लौकिक विद्याओं के अध्ययन में जितना समय और शक्ति लगती है, उसकी तुलना में पांच-दस प्रतिशत शक्ति यदि आंतरिक शक्तियों के विकास में लगे तो दोनों में संतुलन स्थापित हो सकता है। प्रत्येक स्कूल और कालेज में अन्य कालांशों के साथ एक विषय यदि विद्यार्थी की आंतरिक क्षमता के विकास के लिए लगाया जाए तो बहुत बड़ा काम हो सकता है। इसका फलित होगा विधायक दृष्टिकोण का निर्माण। उस स्थिति में अपने आप समस्याओं के समाधान की प्रक्रिया और दृष्टि जागृत होगी।[13]

जिस शिक्षा में अपने संवेगों और आवेशों पर नियंत्रण करना नहीं सिखाया जाता, वह शिक्षा बहुत काम की नहीं होती।[14] बुद्धि का क्षेत्र अलग है और चिंतन का क्षेत्र अलग। हमारे मस्तिष्क में अलग-अलग व्यवस्थाएं हैं। भाव शुद्ध होगा तो चिंतन पवित्र होगा, वाणी पवित्र होगी और कर्म पवित्र होगा। जब तक मस्तिष्क के दांए हिस्से को प्रभावित नहीं करते, हाइपोथेलेमस को प्रभावित नहीं करते और सक्रिय नहीं कर लेते तब तक चरित्र में परिवर्तन नहीं आएगा।[15] हमारे अंतःस्रावी ग्रंथियों और न्यूरोट्रांसमीटर ही हमारे व्यवहार को प्रभावित करते हैं। जब तक रासायनिक परिवर्तन नहीं होता तब तक चरित्र का विकास नहीं हो सकता।[16] हर व्यक्ति में ज्ञान की क्षमता है, आनंद है और शक्ति है। ये प्राणी की विशेषताएं हैं। मात्रा भेद हो सकता है। शिक्षा पर विचार करते समय इस बात पर ध्यान रखना चाहिए कि हमारी शिक्षा प्रणाली इस त्रिपदी पर आधारित हो। यदि शिक्षा में यह बात सम्मिलित नहीं होती है तो मानना चाहिए कि शिक्षा प्रणाली बहुत अच्छी नहीं है।[17] अतः शिक्षा व्यवस्था में एक अधूरी नहीं अपितु पूर्ण व्यवस्था होनी चाहिए जो विद्यार्थी को आंतरिक स्तर पर परिवर्तन लाने में सहायक हो। इस हेतु आचार्य महाप्रज्ञ ने ध्यान-योग को महत्त्व दिया है। उनका कहना है कि ध्यान के पुष्ट अभ्यास से हम भावधारा को पवित्र बना सकते हैं, विद्युत प्रवाह, प्राण प्रवाह तथा रासायनिक स्रावों को प्रभावित कर सकते हैं। यदि ऐसा होता है तो सुखी परिवार और सुखी समाज का निर्माण सहज हो जाता है। यही हमारी समस्या के समाधान का एकमात्र उपाय है।[18]

शिक्षा के चार आयाम हैं-शारीरिक स्वस्थता, मानसिक संतुलन, बौद्धिक विकास और भावनात्मक परिष्कार। व्यक्तित्व के चारों आयाम इसमें समाविष्ट हो जाते हैं। संतुलित शिक्षा

© Eureka Journals 2021. All Rights Reserved.

प्रणाली के लिए भी यही आवश्यक है।[19] चाहे व्यक्तित्व विकास की बात हो अथवा संतुलित शिक्षा की, दोनों ही एक दूसरे के पूरक हैं। विद्यार्थी को पुस्तकीय ज्ञान के साथ उसके व्यावहारिक पक्ष को उजागर करने हेतु आवश्यक है प्राणधारा का संतुलन, जैविक संतुलन, क्षमता की आस्था का जागरण और परिष्कार।[20] प्राण के संतुलन से शारीरिक स्वास्थ्य के साथ मानसिक स्वास्थ्य की प्राप्ति होती है, मानसिक एकाग्रता बढ़ती है, जैविक संतुलन से रसायनों के स्राव में संतुलन होता है जो व्यवहार के संतुलन के लिए आवश्यक है। व्यक्ति में अनंत शक्ति है-इस आस्था का होना भी विकास के लिए आवश्यक है। तत्पश्चात् निषेधात्मक भाव, वृत्तियों, व्यवहार आदि का परिष्कार भी आवश्यक है। परिवर्तन की यह वैज्ञानिक प्रक्रिया है। आचार्य महाप्रज्ञ कहते हैं कि हम शिक्षा की निष्पत्ति के आधार विश्लेषण करें तो तीन शब्द हमारे सामने हैं कार्य कौशल, आचार कौशल और व्यवहार कौशल। इन तीनों में शिक्षा की बात पूरी हो जाती है। आजीविका के लिए कार्य कौशल, परिवार के लिए व्यवहार कौशल और आनंदमय जीवन जीने के लिए आचार कौशल की आवश्यकता होती है।[21] इससे स्पष्ट होता है कि आचार्य महाप्रज्ञ शिक्षा के द्वारा व्यक्ति के सभी पक्षों को महत्त्व देते हैं जो वास्तव में सही अर्थो में शिक्षा का कार्य है।

शिक्षण-प्रशिक्षण

ज्ञान का अपना मूल्य तो है ही पर उस ज्ञान से दूसरे को परिचित करा देना भी बहुत महत्त्वपूर्ण है। शिक्षा के साथ शिक्षण-प्रशिक्षण जुड़ा हुआ है जो सदैव अविभक्त है। इससे शिक्षण-प्रशिक्षण का मूल्य भी स्वतः दृष्टिगत हो जाता है। शिक्षा के उद्देश्यों की पूर्ति शिक्षण से ही होती है। अतः शिक्षण जितना प्रभावशाली होगा, उद्देश्यों की पूर्ति भी उतनी ही अधिक हो सकेगी। आचार्य महाप्रज्ञ कहते हैं शिक्षा के महत्त्व पर विचार किया जाए तो शिक्षा का महत्त्व उसके उद्देश्य की प्राप्ति में ही है। यदि उपयुक्त शिक्षा उचित ढंग से दी जाए व समुचित ढंग से ग्रहण की जाए तो शिक्षण अच्छे समाज की श्रेणी है अन्यथा शिक्षा जब अपने उद्देश्य की पूर्ति नहीं कर पाती है तो उसका महत्त्व अधूरा रह जाता है। आचार्य महाप्रज्ञ कहते हैं कि उपयुक्त शिक्षा मानव को सफलता पूर्वक जीवन व्यतीत करने के लिए योग्य बनाती है। वह मानव को जीवन संग्राम के लिए तैयार करती है। शिक्षार्थियों को सभी प्रकार के असत् व अधंकार से सत व प्रकाश की ओर ले जाने में समर्थ है।[22] आचार्य महाप्रज्ञ

© Eureka Journals 2021. All Rights Reserved.

शिक्षण में कोरे सैद्धांतिक ज्ञान से परिचित करा देने को बहुत उपयोगी नहीं मानते हैं। उनका कहना है कि कोरा सिद्धांत बहुत साथ नहीं दे सकता। उसकी उपयोगिता है। उसे अस्वीकार नहीं किया जा सकता किन्तु उपयोगिता की एक सीमा है। जब तक सिद्धांत का अभ्यास नहीं होता तब तक कार्य पूरा नहीं बनता।[23] अभ्यास का अर्थ है पुनरावृत्ति, बार-बार करना। इसी अभ्यास से क्षमता का विकास होता है, शक्ति बढ़ती है। अभ्यास का अर्थ है सन्निधि, निकटता, पास में रहना। उस क्रिया का अभ्यास हो जाए कि क्रिया और करने वाले का तादाम्य हो जाए।[24] सिद्धांत और प्रयोग दोनों को अलग नहीं किया जा सकता। विद्यार्थी को प्रयोग सिखाने चाहिए जिससे वह अपना व्यक्तित्व रूपांतरित कर सके।[25] हमारी चेतना के दो स्तर हैं-ज्ञान का स्तर और अनुभूति का स्तर। ज्ञान के स्तर पर व्यक्ति जान लेता है और अनुभूति के स्तर पर वह बदलता है। जब तक व्यक्ति ज्ञान के स्तर पर रहता है तक तक उसका आचार-व्यवहार बदलता नहीं। वह कितना की पढ़-लिख जाए, आचार से वह शून्य रहेगा क्योंकि उसमें अनुभूति नहीं है। यह अनुभूति की चेतना बहुत महत्वपूर्ण है। यह बुद्धि से आगे की चेतना है। इसे जगाना ही अभ्यास का काम है।[26] अतः शिक्षण में भी विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है।

अनुशासन

जीवन की सफलता की बहुत बड़ा सूत्र है अनुशासन। वैयक्तिक और सामाजिक दोनों ही दृष्टि से अनुशासन की आवश्यकता है। उसका महत्त्व है। अनुशासन के अभाव में न व्यक्ति सुखी रहता है और न ही समाज और राष्ट्र। अनुशासन एक प्राकृतिक व्यवस्था है। हमारे शरीर में एक अनुशासन है, निद्रा और जागृति का अपना अनुशासन है, नियम है। शरीर में अनुशासन है इसलिए भिन्न-भिन्न अवयव होने पर भी कार्य ठीक से चल रहा है। हाथ, पैर, आंख, कान का समवाय चल रहा है। अनुशासन जीवन का स्वाभाविक विधान है। व्यक्ति के साथ दो प्रकार के अनुशासन जुड़े हैं- स्वाभाविक, अनुशासन और आरोपित अनुशासन। आरोपित अनुशासन बहुत काम नहीं देता है। जो अनुशासन स्वाभावित होता है वह स्वभाव सिद्ध होता है। वहां अंधकार और प्रकाश का, परिषद और अकेले का प्रश्न नहीं उभरता। वहां एक रूपता, एक रसता, समरसता होती है। कोई अंतर नहीं आता है। वह अनुशासन है अध्यात्म का। अध्यात्मविद्या के द्वारा जो अनुशासन प्राप्त होता है वह अन्य किसी विद्या से प्राप्त नहीं

© Eureka Journals 2021. All Rights Reserved.

होता। इंद्रियां, मन, विचार और भाव पर केवल अध्यात्म के द्वारा ही अनुशासन हो सकता है, अन्य किसी के द्वारा नहीं हो सकता।[27]

प्रत्येक व्यक्ति यह सोचे कि विद्यापीठ से हम पचास प्रतिशत शिक्षा पाते हैं और पचास प्रतिशत शिक्षा हमें अध्यात्म के क्षेत्र में प्राप्त करनी है। निन्यानवे प्रतिशत शिक्षा आत्मानुशासन को विकसित करने के लिए होनी चाहिए। एक प्रतिशत शिक्षा बुद्धि को तीक्ष्ण करने के लिए होनी चाहिए।[28] अनुशासन का मूल है आत्मानुशासन।[29] आत्मानुशासन का मतलब है बाहरी प्रभावों से बचना।[30] आत्मानुशासन आएगा शरीर के अनुशासन से, मन के अनुशासन से।[31] आत्मानुशासन तब पैदा होगा जब प्राण शक्ति का संतुलन होगा, जब प्रियता-अप्रियता के क्षण में जीने का अभ्यास होगा, जब शरीरबल, मनोबल, विचारबल और बुद्धिबल में संतुलन स्थापित होगा।[32] कहने का तात्पर्य है कि अनुशासन के द्वारा ही जीवन और जीवन से जुड़े सभी क्षेत्र संतुलित होंगे। विद्यार्थी जीवन में यदि अनुशासन का पाठ भली प्रकार दिया जाए और भली प्रकार ग्रहण किया जाए तो जीवन स्वतः सुख शांतिमय बन जाता है अन्यथा व्यक्ति स्वयं ही नहीं बल्कि समाज व राष्ट्र के लिए भी समस्या बन जाता है। अतः आवश्यकता है कि अनुशासन को विशेष महत्त्व देकर विद्यार्थी जीवन में अधिकाधिक इसका विकास करने वाले तत्त्व अर्थात् अध्यात्म के तत्त्व शिक्षा में हों जिससे अनेक समस्याओं का समाधान स्वतः हो सके।

पाठ्यक्रम

पाठ्यक्रम को दौड़ का मैदान कहा गया है जिसमें विद्यार्थी ज्ञान प्राप्ति हेतु दौड़ता है अर्थात् पाठ्यक्रम के आधार पर ही विद्यार्थी अपने ज्ञान को प्राप्त करता है। अतः पाठ्यक्रम में ऐसे तत्त्वों का समावेश आवश्यक है जो विद्यार्थी को बौद्धिक ज्ञान प्राप्ति में ही सहायक न हो वरन् व्यावहारिक ज्ञान में भी दक्ष बनाए। उसे पुस्तकीय ज्ञान ही न दे वरन् जीवन का ज्ञान भी दे। पदार्थ जगत से ही परिचित न कराए वरन् आध्यात्मिक जीवन से भी परिचित कराए जिससे जीवन के बाह्य और आंतरिक पक्ष में संतुलन स्थापित हो सके। आचार्य महाप्रज्ञ का कहना है कि शिक्षा में पुस्तकीय ज्ञान को महत्त्व न देकर व्यावहारिक पक्ष को महत्त्व देने लिए उसी ढंग से उसका निर्माण होना चाहिए। जीवन के उच्च आदर्शों से पूर्ण भारतीय संस्कृति के अनुकूल बनाने वाली शिक्षा की योजना होनी चाहिए।[33] पदार्थ विकास के लिए

© Eureka Journals 2021. All Rights Reserved.

विज्ञान को अस्वीकार नहीं किया जा सकता तो मानसिक शक्ति के लिए अध्यात्म को भी अस्वीकार नहीं किया जा सकता। हमारा जीवन केवल विज्ञान के आधार नहीं चल सकता तो केवल अध्यात्म के आधार पर भी जीवन नहीं चल सकता। उसमें अध्यात्म और विज्ञान दोनों के लिए अवकाश है। हमारा आंतरिक व्यक्तित्व हमारे चरित्र को सर्वाधिक प्रभावित करता है और उसी के प्रति हम सर्वाधिक अज्ञानी हैं। यह हमारे चरित्र की सबसे बड़ी समस्या है। इस समस्या को सुलझाने का काम शिक्षा संस्थान उठा सकते हैं। चरित्र का संबंध जीवन से है। वह एक जीवन विज्ञान है। जीवन विज्ञान की एक शाखा का विकास किया जाए तो आंतरिक व्यक्तित्व से परिचित होने और उसे समझाने-संवारने का अधिक व्यापक अवसर मिल सकता है।[34] जीवन विज्ञान शिक्षा के पाठ्यक्रम में सिद्धांत और प्रयोग दोनों को समान महत्त्व दिया गया है। अतः आचार्य महाप्रज्ञ आंतरिक व्यंक्तित्व विकास में इसे उपयोगी मानते हैं।

दंड व्यवस्था

शिक्षा के उद्देश्यों की पूर्ति हेतु शिक्षण-प्रशिक्षण में अनेक विधियां-प्रविधियां अपनाई जाती हैं। इस दौरान पुस्कार व दंड का भी अपना महत्त्व है। यह इसलिए महत्त्वपूर्ण है कि इससे विद्यार्थी के उचित व्यवहार को प्रोत्साहित करने और अनुचित व्यवहार को हतोत्साहित करने में सहायता मिलती है। आचार्य महाप्रज्ञ कहते हैं कि विद्यार्थी के लिए दंड प्रयोग अनुचित ही है-ऐसा भी नहीं कहा जा सकता पर उसकी एक सीमा है। सभी की योग्यताएं एक समान नहीं होतीं। सबकी अलग योग्यताएं होती हैं। इस स्थिति में दंड का भी अपना स्थान है। विद्यार्थी को निरंतर दंड से गुजरना पडे-यह भी अच्छा नहीं है और सर्वथा दंड से मुक्त रखा जाए-यह भी अच्छा नहीं है। संतुलन होना चाहिए। यह निर्णय लेने की क्षमता होनी चाहिए कि कब, किसे, कितना दंड दिया जाए।[35] इससे विद्यार्थी में अतः स्पष्ट होता है कि विद्यार्थी के व्यवहार को परिवर्तित करने हेतु शिक्षक को भय और पे्रम का वातावरण निर्मित करना कई संदर्भों में कि आवश्यक हो जाता है पर सीमा का निर्धारण आवश्यक है। यह ध्यान रखना भी आवश्यक है इससे विद्यार्थी के व्यवहार में नकारात्मक प्रभाव न पड़े बल्कि सकारात्मक प्रभाव पड़े अर्थात् मनोवैज्ञानिक ढंग से शिक्षक को अपनी भूमिका अदा करनी चाहिए।

© Eureka Journals 2021. All Rights Reserved.

शिक्षक

शिक्षा को देने का कार्य शिक्षक का होता है। अतः एक ओर शिक्षा है और दूसरी ओर शिक्षक। शिक्षा पद्धति तब प्राणवान बनती है जब उसमें प्राणवान तत्त्वों का समावेश होता है। साथ ही यह भी महत्त्वपूर्ण है कि शिक्षक को भी प्राणवान होना चाहिए क्योंकि विद्यार्थियों से वह प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष दोनों रूपों से जुड़ा रहता है। अतः उसमें उन गुणों का होना आवश्यक है जो विद्यार्थियों में सकारात्मक परिवर्तन लाने में सहायक हों। पुस्तकीय ज्ञान देना ही उसका दायित्व नहीं है बल्कि उसका दायित्व यह भी है कि उसे जीवन का ज्ञान दे, जीवन से परिचित कराए, जीवन का पाठ पढ़ाए। कहा जाता है कि हर व्यक्ति शिक्षक नहीं हो सकता। शिक्षक वह होता है जो दार्शनिक दृष्टि रखता हो जिससे वह किसी विषय पर गहराई से चिंतन मंथन कर समाधान दे सके। आचार्य महाप्रज्ञ का कहना है कि कोई भी शिक्षक जिसमें छात्र बनने की योग्यता नही है, वह शिक्षक नहीं हो सकता।[36] कहने का तात्पर्य है कि शिक्षक को एक विद्यार्थी की तरह ज्ञान प्राप्त करते रहना चाहिए। उसका अध्ययन जितना गहन होगा, वह उतना ही अधिक ज्ञान विद्यार्थियों को दे सकेगा। वह शिक्षक दुर्लभ होता है जो जीवन का पाठ पढ़ाए। पुस्तकों का पाठ पढ़ाने वालों की कोई सीमा नहीं है। इसमें बहुत निष्णात व कुशल लोग मिलते हैं किन्तु जीवन का पाठ पढ़ाने वाले लोग बहुत कम मिलते हैं।[37] शिक्षक अपने उत्तरदायित्व को समझकर राष्ट्र की भावी संपत्ति के नैतिक निर्माण में अपना योग दे। वे स्वयं कल्याण के मार्ग पर अग्रसर होते हुए राष्ट्र को भी उस ओर उन्मुख करे।[38] आचार्य महाप्रज्ञ शिक्षक को समाज परिवर्तन का माध्यम मानते हैं। वे वैचारिक क्रांति को महत्त्व देते हैं जो सकारात्मक हो। उनका कहना है कि जो विचार जगत में जीता है, जिसका वातावरण ज्ञानमय है और जो बौद्धिकता के क्षेत्र में रहता है यदि वह चाहे तो नए मोड़ के लिए समाज को उसकी ओर प्रेरित कर सकता है। यह कार्य शिक्षक आसानी से कर सकता है। घट अतः समाज के सकारात्मक परिवर्तन में शिक्षक की महत्त्वपूर्ण भूमिका है।

मूल्यांकन

शिक्षा में मूल्यांकन का भी अपना महत्त्व है। शिक्षा के तीन प्रकार के परिर्वतन आवश्यक है- ज्ञानात्मक, भावात्मक और क्रियात्मक। ज्ञान जब तक भावों में नहीं उतरता है तब तक क्रिया नहीं हो सकती है। अतः मूल्यांकन करते समय कोरे सैद्धांतिक ज्ञान को महत्त्व न देकर

© Eureka Journals 2021. All Rights Reserved.

व्यावहारिक ज्ञान को भी महत्त्व देना आवश्यक है। तभी वास्तविक मूल्यांकन होगा। आचार्य महाप्रज्ञ का शिक्षा दर्शन चरित्र निर्माण पर सर्वाधिक बल देता है, बौद्धिक विकास के साथ भावात्मक संतुलन को महत्त्व देता है। अतः मूल्यांकन में दोनों पक्षों पर ध्यान देना चाहिए। आचार्य महाप्रज्ञ कहते हैं कि हमारे पास ज्ञान की कसौटी तो है पर आचारण की कोई कसौटी नहीं है। ज्ञान की परीक्षा होती है, उसके मापदंड है पर आचरण के लिए कोई मापदंड नहीं है।[39] इसी बात को ध्यान में रखते हुए शिक्षा में ज्ञानात्मक, भावात्मक और क्रियात्मक पक्ष बल देने हेतु सैद्धांतिक पक्ष के साथ प्रायोगिक पक्ष पर बल देते हैं। इसी के आधार पर सतत निरीक्षण से व्यवहार का मूल्यांकन किया जा सकता है। साथ ही वैज्ञानिक और मनोवैज्ञानिक परीक्षणों के द्वारा भी मूल्यांकन किया जा सकता है।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि आचार्य महाप्रज्ञ ने शिक्षा पर गंभीर चिंतन-मंथन कर जो सुझाव दिए हैं वे वास्तव में वर्तमान शिक्षा प्रणाली की समस्याओं का समधान करने में बहुत उपयोगी हैं। आचार्य महाप्रज्ञ ने एक ऐसे सर्वगीण, आध्यात्मिक-वैज्ञानिक व्यक्तित्व की परिकल्पना की है जिसमें दार्शनिक, वैज्ञानिक, मनोवैज्ञानिक, सामाजिक, आध्यात्मिक आदि सभी पक्षों का समावेश हो जाता है। यदि ऐसे व्यक्तित्व का निर्माण हो तो जीवन से जुड़ी अनेक समस्याओं का समाधान हो सकता है। अतः शिक्षा में बाह्य पक्ष के साथ आंतरिक पक्ष, बुद्धि के साथ चरित्र, सिद्धांत के साथ प्रयोग को महत्त्व दिया है जिससे जीवन में संतुलन स्थापित हो सके, वैयक्तिक ही नहीं वरन् वैश्विक स्तर की समस्याओं का समाधान हो सके। यह तभी संभव हो सकता है कि जब शिक्षा में इसके अनुरूप तत्त्वों का समावेश हो। आचार्य महाप्रज्ञ ने शिक्षा में यौगिक अभ्यास को बहुत महत्त्व दिया है जो वैज्ञानिक दृष्टि से बहुत उपयोगी हैं साथ ही इसके अनुरूप अन्य व्यवस्थाओं पर भी अमूल्य सुझाव दिए हैं। वर्तमान परिपे्रक्ष्य में आचार्य महाप्रज्ञ का शिक्षा दर्शन शिक्षा जगत के लिए मील का पत्थर है। आचार्य महाप्रज्ञ कहते हैं कि शिक्षा में आमूल परिवर्तन करने में देश का कल्याण है क्योंकि शिक्षा स्वतंत्र भारतीय परिस्थितियों के प्रतिकूल है। शिक्षा प्रणाली में क्रांति की आवश्यकता है और इसी में भारत का उज्जवल भविष्य और निर्मल राष्ट्रीयता का उदय निर्भर है।[40] निष्कर्षतः कहा जाता है कि वास्तव में आचार्य महाप्रज्ञ का शिक्षा दर्शन ससीम से असीम का दर्शन है जिसमें सर्व कल्याण निहित है।

© Eureka Journals 2021. All Rights Reserved.

Vol. 5, Issue 1 – 2021
ISSN: 2581-4044

संदर्भ

1. जीवन विज्ञान: शिक्षा का नया आयाम, पृ. 2-3.
2. घट घट दीप जले, पृ. 133.
3. घट घट दीप जले, पृ. 131.
4. घट घट दीप जले, पृ. 124.
5. घट घट दीप जले, पृ. 131.
6. महाप्रज्ञ ने कहा-4, पृ. 69.
7. जीवन विज्ञान: स्वस्थ समाज की परिकल्पना, पृ. 15.
8. जीवन विज्ञान: स्वस्थ समाज का संकल्प, पृ. 40-42.
9. अवचेतन मन से संपर्क, पृ. 44.
10. महाप्रज्ञ ने कहा-6, पृ. 147.
11. अवचेतन मन से संपर्क, पृ. 44-45.
12. जीवन विज्ञान: स्वस्थ समाज संरचना का संकल्प, पृ. 42.
13. अवचेतन मन से संपर्क, पृ. 55.
14. महाप्रज्ञ ने कहा-6, पृ. 135.
15. महाप्रज्ञ ने कहा-4, पृ. 140.
16. महाप्रज्ञ ने कहा-6 पृ. 141.
17. महाप्रज्ञ ने कहा-6, पृ. 135.
18. अवचेतन मन से संपर्क, पृ. 48.
19. जीवन विज्ञान: शिक्षा का नया आयाम, पृ. 3-4.
20. जीवन विज्ञान: शिक्षा का नया आयाम, पृ. 8.
21. महाप्रज्ञ ने कहा-6, पृ. 131-134.
22. घट घट दीप जले, पृ. 131.
23. जीवन विज्ञान: स्वस्थ समाज संरचना का संकल्प, पृ. 46.
24. जीवन विज्ञान: स्वस्थ समाज संरचना का संकल्प, पृ. 73.
25. जीवन विज्ञान: स्वस्थ समाज संरचना का संकल्प, पृ. 47.
26. जीवन विज्ञान: स्वस्थ समाज संरचना का संकल्प, पृ. 55.

© Eureka Journals 2021. All Rights Reserved.

27.अवचेतन मन से संपर्क, पृ. 111-112.
28.जीवन विज्ञान: शिक्षा का नया आयाम, पृ. 42
29.जीवन विज्ञान: शिक्षा का नया आयाम, पृ. 58.
30.जीवन विज्ञान: शिक्षा का नया आयाम, पृ. 64.
31.जीवन विज्ञान: शिक्षा का नया आयाम, पृ. 61.
32.जीवन विज्ञान: शिक्षा का नया आयाम, पृ. 65.
33.घट घट दीप जले, पृ. 132-33.
34.घट घट दीप जले, पृ. 121.
35.जीवन विज्ञान: स्वस्थ समाज संरचना का संकल्प, पृ. 70.
36.घट घट दीप जले, पृ. 126.
37.महाप्रज्ञ ने कहा-6, पृ. 111.
38.घट घट दीप जले, पृ. 130.
39.अवचेतन मन से संपर्क, पृ. 46.
40.घट घट दीप जले, पृ. 133.
41.जीवन विज्ञान: शिक्षा का नया आयाम-आचार्य महाप्रज्ञ, जैन विश्वभारती प्रकाशन, लाडनूं, 2003.
42.घट-घट दीप जले-आचार्य महाप्रज्ञ, आदर्श साहित्य संघ प्रकाशन, 1983.
43.महाप्रज्ञ ने कहा-4, आचार्य महाप्रज्ञ, साहित्य संघ प्रकाशन, दिल्ली, 2006.
44.जीवन विज्ञान: स्वस्थ समाज संरचना का संकल्प -आचार्य महाप्रज्ञ, जैन विश्वभारती प्रकाशन, लाडनूं, 1987.
45.अवचेतन मन से संपर्क-आचार्य महाप्रज्ञ, जैन विश्वभारती प्रकाशन, 2003.
46.महाप्रज्ञ ने कहा -6 आचार्य महाप्रज्ञ, साहित्य संघ प्रकाशन, दिल्ली, 2007.

© Eureka Journals 2021. All Rights Reserved.